3

भारतीय विद्या का परिचय

जयतु जगतां मूलं सत्यं सनातनमञ्जुसा
जयतु सरसा दिव्या वाणी तदीयमनोऽनुंगा।

जयतु विदुषां वर्गः तस्याः सदातन आश्रयः
जयतु च निधिस्तेषां पूर्णा चिरन्तनभारती॥

प्रस्तावना

दर्शन-परिचय के पाठ में दर्शन के विविध विषयों की आलोचना की गई है। और वहाँ विद्या-विभाग के विविध प्रकार प्रदर्शित हैं। वहाँ उल्लिखित कुछ विद्याओं का संक्षिप्त परिचय इस पाठ में होगा।

वेद के सर्वमूल होने के कारण उसका विविध रूप से परिचय आवश्यक है। और वेदोद्भूत कुछ विद्याओं की भी जीवन उपयोगिता की अधिकता का परिचय यहाँ प्रदान किया जाएगा।

आधुनिक विज्ञान के ज्ञानार्जन की प्रक्रिया तो प्रयोगात्मक और भ्रामक है। उसे ही परीक्षण त्रुटि विधि कहते हैं। अत एव बहुत उदाहरण प्राप्त होते हैं जहाँ विज्ञान द्वारा किसी भी जीवन-उपयोगी औषधि अथवा यन्त्र का आविष्कार हुआ। परन्तु महान कालान्तर से ज्ञात हुआ कि इस प्रकार मानव, पशुओं और पृथिवी की क्षति होती हैं। अतः उसके निवारण के लिए नवीन आविष्कार करोड़ों रूपयों के व्यय से किये जाते है। उसके भी दोष दीर्घकाल द्वारा ही ज्ञात होते हैं। कारण यह है कि वहाँ प्रयोग और प्रमाद, ये मार्ग अवलम्बित होते हैं। भारतीय आर्ष परम्परा में ऐसा नहीं है। सभी शास्त्र और दर्शन ऋषि प्रणीत हैं। और वे दिव्य चक्षुष द्वारा दृष्ट एवं प्रमाद रहित हैं। कभी भी भारतीय विद्याओं की प्रयोग और प्रमाद परम्परा नहीं रही है। प्रयोग-प्रमाद प्रक्रिया के अभाव से आधुनिक, उन विद्याओं के अंगीकार में श्रद्धा नहीं दिखती है। परन्तु वह

टिप्पणी

काल गया। कालचक्र परिवर्तित होता है। प्रेक्षक की सदैव युक्ति सारभूत सम्यक दृष्टि ही होती है। अतएव पाश्चात्य भारतीय परम्परा के ज्ञान के लिए अत्यन्त उत्सुक हैं। वेद-मन्त्रों के उच्चारण में उत्साह के साथ प्रवृत्त होते हैं। उस भारतीय ज्ञान परम्परा के अच्छी प्रकार से ज्ञान के लिए यहाँ प्रयास किया जा रहा है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- वेदों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर पाने में;
- वेदों के प्रकारों को जान पाने में;
- वेदों के अंगों को जान पाने में;
- वेदांगों के प्रवर्तक आचार्य और उनके ग्रन्थों को जान पाने में;
- वेदांगों के प्रयोग को जान पाने में;

3.1 वेद

'विद् ज्ञाने', इस धातु से धञ्-प्रत्यय के योग से वेद शब्द निष्पन्न है। अत: वेद अलौकिक ज्ञान राशि ही है। वेद शब्द के और भी विभिन्न अर्थ हैं।

वहाँ/उसमें धर्मब्रह्म का प्रतिपादक अपौरूषेय प्रमाण-वाक्य वेद है। धर्म यहाँ कर्म ही है। आपस्तम्ब द्वारा वेद का लक्षण किया गया है-

मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदमधेयम्। अर्थात् मन्त्र और ब्राह्मण, इनका नाम वेद है।

वेद के मन्त्र और ब्राह्मण, दो विभाग हैं। सायणाचार्य द्वारा भी ऋग्वेदभाष्य की भूमिका में वेद का लक्षण कहा गया- 'मन्त्रब्राह्मात्मकशब्दराशिर्वेद'।

वेद की महिमा अपार है। न केवल मनुष्यों के अपितु देव आदि के भी वेद चक्षु समान हैं। भगवान् स्वयं वेद का अवलम्बन करके विश्व की सृष्टि करता है। वह समग्र वेद भी मनुष्यों द्वारा दुष्प्राप्य है। मनु मुनि स्वयं ही वेद की महिमा को मानते हैं तथा-

पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम्।
अशक्यं चाप्रमेयं च वेदशास्त्रमिति स्थितिः॥ (मनु. 12/94)

वेद के वेदोद्भूत ज्ञान के बिना भारतीय संस्कृति का बोध सम्भव नहीं है। संस्कृति का मूल वेद में ही है। इसीलिए मनुमुनि ने कहा-

चातुर्वर्ण्य त्रयो लोकाश्चत्वारश्माश्रमाः पृथक्।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्व वेदात् प्रसिध्यति।। (मनु. 11/97)

अत एव वेदाध्ययन के विषय में लोगों द्वारा साग्रह एवं सोत्साह से प्रवर्तित होना चाहिए। इसीलिए विद्वानों की उक्ति है-

'ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मषडंगो वेदोऽध्यो ज्ञेयश्च'।

संस्कृति नाम सपरिष्कृत जीवनपद्धति है, जिससे क्रमशः आत्मोद्धार सिद्ध होता है। भारतीय सनातन संस्कृति चार पुरूषार्थों द्वारा परिकल्पित है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चार पुरूषार्थ हैं। काम ही लौकिक जीवन की सन्तृप्ति अथवा सुख है। अर्थ ही उस सुख के लाभ के लिए अपेक्षित वस्त्र-आहार-धन-क्षेत्र आदि जीवन साधन हैं। धर्म ही अर्थों के अर्जन में तथा सुख-लाभ में शास्त्र में कह गए नियम विशेष है। मोक्ष अनन्त शाश्वत आनन्द है। इनके विवेक में वेद परम प्रमाण है। वेद किन्हीं पुरूषों द्वारा विरचित ग्रन्थ नहीं है। अतः उसे अपौरूषेय कहते हैं। वह तो ऋषियों द्वारा किसी योग की भूमिका में दृष्ट है अर्थात् साक्षात्कृत है। इष्ट के लाभ में और अनिष्ट के परिहार में जो अलौकिक उपाय को बताता है, वह वेद है। उससे-

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता।। (ऋग्वेदभाष्य भूमिका)

ऐसा सायणाचार्य ने वेद लक्षण कहा। उनका यह अर्थ है - पुरूष जब इष्ट के लाभ और अनिष्ट के परिहार निवारण में प्रत्यक्ष अथवा अनुमान आदि द्वारा आलोचन के बल से उपाय को प्राप्त नहीं करता है, तब वह उपाय जिससे प्राप्त होता है अर्थात् जाना जाता है, वह वेद है। अत एव वेद का ज्ञान रूप प्रतिष्ठित है।

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, ये चार वेद हैं। उसमें प्रत्येक वेद के मन्त्र और ब्राह्मण, दो विभाग होते हैं। ब्राह्मण के ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् विषय भेद से तीन विभाग होते हैं।

पाठागत प्रश्न 3.1

1. वेद शब्द कैसे निष्पन्न है? उसका क्या अर्थ है?
2. ब्राह्मण द्वारा वेदाध्ययन क्यों करना चाहिए?
3. पितृ, देव और मनुष्य का सनातन चक्षु क्या है?

   (क) न्याय (ख) सांख्य (ग) योग (घ) वेद
4. पुरूषार्थों के विवेक में परम प्रमाण क्या है?

   (क) न्याय (ख) सांख्य (ग) योग (घ) वेद

टिप्पणी

3.1.1 मन्त्र

मन्त्र वेद विहित कर्मों के अनुष्ठान, अनुष्ठान के द्रव्य, देवता इत्यादि के प्रकाशक एवं प्रतिपादक हैं। मन्त्र भी ऋग्, यजु, साम, अथर्वा, इस भेद से चार हैं। (ऋच्, चकारान्त, स्त्रीलिंग, शब्द है। यजुस् सकारान्त नपुंसकलिंग शब्द है। सामन् नकारान्त नपुंसकलिंग शब्द है। अथर्वन् नकारान्त पुलिंग शब्द है) पद्य रूप में गायत्री आदि छन्दों अथवा वृत्तियों में विद्यमान मन्त्र ऋक् कहलाता है। यथा- 'अग्निमीले पुरोहितम्' उदाहरण है। वह ही ऋचाएँ जब गीति विशिष्ट होती हैं अर्थात् उनका गायन होता है तब वे ऋचाएँ ही साम कही जाती हैं। 'ऋचि अध्यूढं साम:', यह उक्ति है। अर्थात् कि आधारभूता ऋक् ही है। गीतियों में समाख्या (गीतिषु समाख्या) यहाँ जैमिनि का वचन स्मरण करने योग्य है। जो मन्त्र एक नहीं है, साम नहीं है परन्तु यज्ञ आदि कर्मों में प्रयुज्य होता है, वह मन्त्र ऋक् साम से विलक्षण यजु होता है। संबोधन रूप और सम्भाषण रूप मन्त्र का भी यजु में ही अन्तर्भाव होता है। निगद मन्त्र ही सम्भाषण मन्त्र हैं। इस प्रकार मन्त्र निरूपित हैं। यजुर्वेद शुक्ल, कृष्ण के भेद से दो प्रकार का है। सामवेद पूर्वाचिक, उत्तरर्चिक के भेद से दो प्रकार का है। अथर्ववेद की पैप्पलाद, दान्ता, प्रदान्ता, स्तौता, ओन्ता, ब्रह्मदायश, शौनिकी, वेददर्शी, चरणविद्या, ये नव शाखाएँ सुनी जाती है। परन्तु इस समय शौनकी और पैप्पलादी, दो शाखाएँ उपलब्ध है। अथर्ववेद के नक्षत्रकल्प, विधिविधानकल्प, विधिविधानकल्प, संहिताकल्प, शान्तिकल्प, ये पाँच कल्प हैं।

3.3.2 ब्राह्मण

अब यहाँ ब्राह्मण का निरूपण है।

मेदिनीकोश में 'ब्राह्मणं ब्रह्मसंघाते वेदभागे नपुंसकम्'।

अर्थात् वेद के विशिष्ट भाग ब्राह्मण कहलाते है। ब्राह्मण नामक कर्म के तन्त्र-मन्त्र का व्याख्यान ग्रन्थ है, ऐसा भट्ट-भास्कर का मत है। (तै. सं. भाष्य 1.5.1) जैमिनि द्वारा उदीरित ब्राह्मण का लक्षण है-

शेषे ब्राह्मणशब्द:। मन्त्रांश अंश को छोड़कर वेद के अवशिष्ट भाग ब्राह्मण है, ऐसा उनका मत है। ब्राह्मण के भी ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् तीन विभाग होते हैं। उसमें जो ब्राह्मण है उस विषय में आपस्तम्ब द्वारा सूत्रित है - कर्मचोदना ब्राह्मणानि। योग आदि क्रिया विधि जहाँ वर्णित है, वह ब्राह्मण है, ऐसा उसका तात्पर्य है। ब्राह्मणों में वर्णित विषय हैं - विधि, अर्थवाद, निन्दा, प्रशंसा, पुराकल्प और पराकृति। ब्राह्मण में क्या विषय हैं, इस विषय में शबरस्वामी लिखते हैं-

'हेतुर्निवचनं निन्दा प्रशंसा संशयो विधि:।
परक्रिया पुराकल्पो व्यवधारणकल्पना॥
उपमानं दशैते तु विषया ब्राह्मणस्य॥ (शाबरभाष्य 2.1.8)

ब्राह्मण विधि-निषेध-नामधेय-अर्थवाद के भेद से चार भागों में सामान्यतः विभाजित है। ब्राह्मण विभाग के अनेक प्रकार हैं। परन्तु यहाँ यह एक ही अवलम्बित है।

विधि

आचार्यों द्वारा विधि शब्द के विभिन्न अर्थ किये गए हैं। यथा 'शब्दभावना विधिः, ऐसा कुमारिल भट्ट तथा 'नियोगः विधिः', ऐसा प्रभाकर कहते हैं। 'इष्टसाधनता विधिः', ऐसा तार्किक आदि सभी स्वीकार करते हैं। और वह विधि उत्पत्तिविधि, विनियोगविधि, अधिकारविधि, प्रयोगविधि के भेद से चार प्रकार की है। उसमें 'कर्मस्वरूपमात्रबोधक' विधि उत्पत्ति विधि है। यथा-अग्निहोत्रं जुहोति। और यहाँ विधि में कर्म के करणत्व से अन्वय है। अग्निहोत्र होम द्वारा इष्ट को प्राप्त करे, वह अर्थ है।

अंगों के प्रधान रूप से सम्बन्ध की बोधक विधि विनियोग विधि है। यथा, दध्ना जुहोति। वह ही तृतीया द्वारा प्रतिपन्न अंगभाव के दधि-होम के संबंध का विधान करता है। दधि द्वारा होम (यज्ञ) करे। व्रीति द्वारा यज्ञ करे इत्यादि में व्रीहि का यज्ञ से सम्बन्ध कहता है। विनियोग-विधि के सहकारी-भूत छः प्रमाण हैं। वे श्रति-लिंग-वाक्य-प्रकरण-स्थान-समाख्या रूप हैं।

इतिकर्तव्यता जिसकी है, वह इतिकर्तव्यताक है। अर्थात् जो फल को प्राप्त करे, वह। जैसे फलस्वामी। 'कर्मजन्यफलस्वाम्यबोधक विधि अधिकर विधि है।' कर्मजन्यफलस्वाम्य ही कर्मजन्यफलभोक्तृत्व है। और वह 'यजेत स्वर्गकामः' इत्यादि रूप है। स्वर्ग को उद्देश्य करके इस योग को लेकर स्वर्गकाम के यागजन्यफलभोक्तृत्व को प्रतिपादित करता है। 'स्याहिताग्नेरग्निर्गृहान् दहेत् सोऽग्नये क्षामवतेऽष्टाकपालं निर्वपेत्' इत्यादि अग्निदाह आदि निमित्त में कर्म के लेकर निमित्तवत कर्मजन्यपापक्षयरूफलस्वाम्य को प्रतिपादित करते हैं। एवम् नित्य सन्ध्या उपासना आदि द्वारा शुचिविहितकालजीवन - सन्ध्योपासनजन्य - प्रत्यवाय - परिहाररूप - फलस्वाम्य को कहते हैं। प्रयोगप्रशुभाव बोधक विधि प्रयोग विधि है। जिस विधिवाक्य द्वारा प्रयोग के शीघ्रता सम्पादन का बोध होता है, वह प्रयोग विधि कही जाती है। अर्थात् कौन सी विधि किस क्रम से करनी चाहिए, किससे पूर्व कौन सी विधि है, किससे बाद कौन सी विधि है, ऐसा विवेक जिस वाक्य से होता है, वह प्रयोगविधि है। अंगसमूह का क्रम-बोधन प्रयोग विधि द्वारा किया जाता है।

पाठागत प्रश्न 3.2

1. पद्यरूप में गायत्री आदि छन्दों (वृत्तों) में विद्यमान मन्त्र को क्या कहते हैं?

   (क) ऋक् (ख) यजुस् (ग) साम (घ) अथर्व

2. ऋचा (ऋच्) जब गीति-विशिष्ट होती है तब वह क्या कहलाती है?

   (क) ऋक् (ख) यजुस् (ग) साम (घ) अथर्व

टिप्पणी

3. जो मन्त्र पद्यरूप में नहीं है, गीति रूप में नहीं है परन्तु कर्म में प्रयुक्त होता है, वह क्या है?

   (क) ऋक् (ख) यजुस् (ग) साम (घ) अथर्व

4. शुक्ल-कृष्ण के भेद से कौन सा वेद विभक्त है?

   (क) ऋक् (ख) यजुस् (ग) साम (घ) अथर्व

5. शौनक शाखा किस वेद की है?

   (क) ऋक् (ख) यजुस् (ग) साम (घ) अथर्व

6. मन्त्रांश को छोड़कर वेद का अवशिष्ट भाग क्या है?

   (क) ऋक् (ख) यजुस् (ग) साम (घ) अथर्व

7. चार विधियों में यह अन्यतम है?

   (क) उत्पत्ति विधि (ख) गुणविधि (ग) प्रधानविधि (घ) अनुवाद

3.1.3 विनियोग विधि

विनियोग विधि के बोधित अंग सिद्ध रूप और क्रिया रूप, ये दो प्रकार के है। क्रिया रूप अंग गुणकर्म और प्रधानकर्म दो प्रकार के हैं। उसमें गुणकर्म सन्निपत्योपकारक है। प्रधानकर्म आरादुपकारक है। प्रकारान्तर द्वारा कर्मस्वरूप दो प्रकार का है-गुणकर्म और अर्थकर्म।

गुणकर्म

उसमें कर्ता-कर्म कारक है आश्रित जो विहित कर्म है, वह गुणकर्म है। यज्ञ के साधनभूत जो द्रव्य आदि हैं उसके संस्कारजनक कर्म, गुणकर्म हैं। उस कर्म के चार भेद हैं- उत्पत्तिकर्म, आप्यकर्म, विकृतिकर्म और संस्कृतिकर्म।

उत्पत्ति कर्म

जो साधन पूर्व में नहीं था परन्तु उसकी उत्पत्ति करनी चाहिए। वह कर्म उत्पत्ति कर्म कहा जाता है। यथा वसन्ते ब्राह्मण: अग्निम् आदधीत, यहाँ वसन्त में अग्नि संस्कार विशिष्ट उत्पादनीय है। यह कर्म उत्पत्तिकर्म है। 'यूपं तक्षति' अन्य उदाहरण है। यूप पूर्व में नहीं था। इस तक्षण कर्म से वह उत्पन्न होता है। अत: यह उत्पत्ति कर्म है।

आप्यकर्म

साधन है परन्तु उसकी प्राप्ति करनी चाहिए। वह कर्म आप्यकर्म है। जैसे- 'स्वाध्यायोऽध्येतव्य'। यहाँ विद्या है, वह प्राप्तव्य है। यथा पय: दोग्धि। यहाँ पय है, उसका दोहन करना चाहिए।

विकृतिकर्म

द्रव्य आदि के पूर्वरूप में विकार किये जाते है, उसके बाद याद आदि में दिए जाते हैं। वह कर्म विकृतिकर्म है। यथा 'व्रीहिन् अवहन्ति', यहाँ व्रीहियों के अवहन द्वारा विकार होता है। अतः इस प्रकार का कर्म विकृतिकर्म है।

संस्कृति कर्म -

द्रव्य आदि में कुछ संस्कार विशेष इस कर्म से होता है। यथा- 'व्रीहिन् प्रोक्षति', यहाँ प्रीहियों का प्रोक्षण अर्थात् विशिष्ट प्रक्षालन किया जाता है। यह संस्कार विशेष है। अतः इस प्रकार का कर्म संस्कृति कर्म है। ये चारों कर्म योग कर्म के अंग है।

अर्थकर्म

'आत्मसमवेतापूर्वजनक कर्म अर्थकर्म है।' यथा- अग्निहोत्रं दर्शपूर्णमास में प्रयाज और अनुयाज है। यह कर्म-कर्ता अपूर्व को प्राप्त करता है। अंग और प्रधान, उसके दो प्रकार हैं। जो कर्म अन्य के लिए किये जाते हैं वह अंगकर्म है। जो कर्म अपने लिए किये जाते हैं, वह प्रधान कर्म है। अंग कर्म दो प्रकार के हैं - संनिपत्योपकारक और आरादुपकारक।

संनिपत्योपकारक

जो अंग साक्षात् अथवा परम्परा से विहित फलों के साधनरूप योग शरीर व्यूह को निष्पन्न कर शरीर द्वारा उससे उत्पन्न होकर पूर्वयोगी होते हैं, वे अंग सीधे, नीचे, नीचे सम्मिलित होकर, एक के साथ द्वितीय मिलकर, द्रव्य देवता को उद्देश्य करके, उद्देश्य करके विधीयमान उपयोगी होते हैं, वे सन्निपत्योपकारक कहलाते हैं। ये द्रव्यदेवतागत संस्कार द्वारा यागोत्पचयपूर्वोकारक होते हैं।

आरादुपकारक

द्रव्य और याग को अनुद्देश्य करके, केवल द्रव्ययाग से उद्देश्यरहित, विधीयमान विधि द्वारा अनुष्ठान के लिए उपश्राव्यमान कर्म है। यथा प्रयाज, आज्यभाग, अनुयाज आदि स्वरूप कर्म आराह्य उपकारक, साक्षात् उपकारक एवं अंगी यागोपकारक होता है। प्रयाज, आज्य भाग, अनुयाज आदि आराह्य उपकारक अर्थात् परमापूर्वात्त ही उपकारी हैं। वे द्रव्यदेवतागत-संस्कारजनक नहीं है। विनियोग विधि निरूपित हैं।

3.1.4 निषेध

पुरूष का निवर्त वाक्य निषेध है। यदि पुरूष का कोई कार्य अनर्थजनक हो तब वेदवाक्य उस कार्य से पुरूष को निवर्त करता है। इसीलिए- 'न कलञ्जं भक्षयेत्' निषेधवाक्य अनर्थजनक होने से कलञ्जं भक्षण से पुरूष को निवर्त करता है।

टिप्पणी

3.1.5 नामधेय

विधेयार्थ परिच्छेदक वाक्य नामधेय कहलाता है। जिस वाक्य से विधेय की कर्तव्यता द्वारा उपदिष्ट याग का परिच्छेद होता है अर्थात् नाम जाना जाता है वह नामधेय वाक्य है। इसलिए- उद्भिदा यजेत पशुकामः यागविशेष का विधान है।

3.1.6 अर्थवाद- (प्राशस्त्यनिन्दान्यतरपरं वाक्यमर्थवादः)

प्राशस्य- निन्दा अन्तरपरम् वाक्य अर्थवाद है। जिस वेदवाक्य के स्वार्थ प्रतिपादन में तात्पर्य नहीं है किन्तु जो वेदवाक्य प्रशंसा अथवा निन्दा द्वारा विधेय और निषेध के कर्तव्यत्व-अकर्तव्यत्व को सूचित करता है वह अर्थवाद वाक्य कहा जाता है। यथा - 'वायुर्वे क्षेपिष्ठा देवता', इस वेदवाक्य द्वारा वायु के शीघ्रगामित्व को सूचित किया जा रहा है। वस्तुतः इसके द्वारा वायु की प्रशंसा की जा रही है। और उससे वायु शीघ्रफलदाता के रूप में सूचित होता है। अर्थवाद के गुणवाद, अनुवाद और भूतार्थवाद, तीन प्रकार हैं। कहा गया है-

विरोधे गुणवादः स्यादनुवादोऽवधारिते।
भूतार्थवादस्तद्धानादर्थवादस्त्रिधा मतः॥

गुणवाद- प्रमाणान्तर विरूद्ध अर्थबोधक गुणवाद है। पशुयाग में पशुनियोजन के लिए कुछ स्तम्भ किये जाते हैं। वह यूप कहलाता है। यूप की स्तुति को- 'आदित्यो यूपः' कहते है। यहाँ आदित्य और यूप में अभेद प्रकट है। वस्तुतः आदित्य का यूप से भेद ही सुप्रसिद्ध है। तो कैसे आदित्यो यूपः? प्रत्यक्ष आदि प्रमाणान्तर विरोध यहाँ स्पष्ट परिलक्षित होता है। यूप में आदित्य का अभेद है, इस वाक्य का मुख्यार्थ बाधित है। मुख्यार्थ बाधा में लक्षणा की जाती है। यहाँ आदित्य का उज्ज्वलनत्व उसके स्वयं का गुण यूप में है, ऐसा मानकर गुण सादृश्य के कारण लक्षणा की गई। गुण द्वारा लक्षणा की गई। अतः यह गुणवाद है।

अनुवाद- प्रमाणान्तर प्राप्त अर्थ का बोधक अनुवाद है। प्रत्यक्ष आदि प्रमाणेन से जो निर्धारित, ज्ञात तथ्य जिसके द्वारा प्रकट होता है, वह अनुवाद होता है। अग्नि हिम की अर्थात् शैत्य की औषधि है, यह सुविदित है। अग्नि शीत का नाश करती है, ऐसा किसी अन्य प्रमाण द्वारा निश्चित है। उसके ही अर्थ का- 'अग्निर्हिमस्य भेषजम्', इस वाक्य द्वारा प्रकटन किया गया है। इस वाक्य द्वारा अग्नि की स्तुति की गई है। यहाँ प्रमाणान्तरविरोध नहीं है। अतः यहाँ यह अर्थवाद अनुवाद कहलाता है।

भूतार्थवाद - प्रमाणान्तर विरोध और उसकी प्राप्ति से रहित अर्थ का बोधक भूतार्थवाद है। प्रमाणान्तर विरोध अथवा प्रमाणान्तर प्राप्ति जहाँ नहीं है वह भूतार्थवाद है। यहाँ इन्द्रो वृत्राय वज्रमुदयच्छत्, इस वाक्य का जो अर्थ है उसका किसी अन्य प्रमाण से विरोध नहीं है। और वह अर्थ किसी प्रमाण द्वारा प्राप्त या ज्ञात भी नहीं है। अतः गुणवाद

में दृष्ट विरोध, अनुवाद में दृष्ट अवधारणा, यहाँ दोनों ही नहीं है, दोनों की हानि होती है, परित्याग होता है। यहाँ जो यह अर्थवाद है, उसे भूतार्थवाद कहते है। इस वाक्य में इन्द्र की स्तुति है।

तीन अर्थवाद की विधि में स्तुति करते हैं। विधिस्तुतिपरत्व उन तीनों में भी होता है। यह तीनों में समानता है। जिस ज्ञान का विज़य अबाधित है और अज्ञात है उस विषय के ज्ञान को प्रमा कहते है। उस ज्ञान में ही प्रामाण्य होता है। गुणवाद में तो बाधित विषय जाना जाता है, अनुवाद में तो पूर्वतः ज्ञात विषय ही जाना जाता है। अतः गुणवाद और अनुवाद का प्रमाण्य नहीं है। ब्राह्मण का विषय अवलम्बन करके आगे जैमिनि ने धर्ममीमांसा रचा। वहाँ ये विषय विस्तारपूर्वक प्रकट हैं। एवं उस में ही निरूपित अर्थवाद भाग है।

पाठगत प्रश्न 3.3

1. यह गुणकर्म नहीं है।

   (क) उत्पत्तिकर्म (ख) आप्यकर्म (ग) विकृतिकर्म (घ) आरादुपकारककर्म

2. अनर्थजनक होने के कारण कर्म से पुरूष निवारण करता है वह वेदवाक्य क्या कहलाता है?

   (क) विधि (ख) निषेध (ग) नामधेय (घ) अर्थवाद

3. विधेयार्थ परिच्छेदक वेदवाक्य क्या कहलाता है?

   (क) विधि (ख) निषेध (ग) नामधेय (घ) अर्थवाद

4. प्राशस्त्य-निन्दान्यतरपरम् वेदवाक्य क्या कहलाता है?

   (क) विधि (ख) निषेध (ग) नामधेय (घ) अर्थवाद

5. यह अर्थवाद नहीं है?

   (क) गुणवाद (ख) अनुवाद (ग) भूतार्थवाद (घ) प्रामाण्यवाद

6. अन्य प्रमाण द्वारा सिद्ध अर्थ के विरूद्ध अर्थ जो वेदवाक्य को बोधित करता है, वह क्या है?

   (क) गुणवाद (ख) अनुवाद (ग) भूतार्थवाद (घ) प्रामाण्यवाद

7. अन्य प्रमाण द्वारा सिद्ध अर्थ जो वेदवाक्य बोधित करता है, वह क्या है?

   (क) गुणवाद (ख) अनुवाद (ग) भूतार्थवाद (घ) प्रामाण्यवाद

टिप्पणी

8. अन्य प्रमाण द्वारा सिद्ध अथवा विरूद्ध अर्थ का बोध नहीं होता, वह वेदवाक्य क्या है?

(क) गुणवाद (ख) अनुवाद (ग) भूतार्थवाद (घ) प्रामाण्यवाद

3.1.7 आरण्यकों का परिचय

मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदमागधेयम्, यह प्रसिद्ध वेदलक्षण है। आरण्यक और उपनिषद् ब्राह्मणों के परिशिष्ट ग्रन्थ ही कहलाते है। अरण्य में पढ़ने के कारण आरयण्क, यह अन्वर्थ वेदभाष्यकार सायण ने प्रख्यात किया है। इसलिए कहा गया है-

''अरण्याध्ययनादेतदारण्यकमितीर्यते।
अरण्ये तदधीयेतेत्येवं वाक्य प्रवक्ष्यते।।''

महाभारत में कहते है तथा औषधियों से अमृत उद्धृत है वैसे ही श्रुति से आरण्यक प्रणीत है। ब्राह्मण-भाग के अंश यद्यपि आरण्यक है तथापि उसकी अपेक्षा आरण्यक कुछ वैशिष्ट्य से युक्त है। अत एव रहस्य ब्राह्मण भी इसका अन्य नाम है। गोपथ ब्राह्मण में रहस्य शब्द द्वारा आरण्यक अभिहित है। वस्तुत 'रहस्य' शब्द द्वारा ब्रह्मविद्या को कहते हैं। विषय विवेचन की दृष्टि से आरण्यक उपनिषद् में साम्यता है। अतः बृहदारण्यक आदि में उपनिषद् शब्द भी व्यवहृत है।

3.1.8 वेदान्त

जिस ब्राह्मण वाक्य में विधि उक्त नहीं है, निषेध, नामधेय अथवा अर्थवाद भी नहीं, वह ब्राह्मण वाक्य वेदान्त वाक्य कहलाता है। यह वेदान्त वाक्य अज्ञात और अबाधित के अर्थ का ज्ञापक है। तथापि कर्म-अनुष्ठान का प्रतिपादक नहीं होता है। अतः वह विधि नहीं है। ब्रह्म आनन्दस्वरूप एवं ज्ञानस्वरूप है। वेदान्त वाक्य का अर्थ यह ब्रह्म ही है। यह ब्रह्म लाभ ही मोक्ष रूपी पुरूषार्थ है।

उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलम्।
अर्थवादोपपत्ती च लिंग तात्पर्यनिर्णये।।

उपक्रम, उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद और उपपत्ति, ये छः लिंग वेदान्त-श्रवण के हैं। वेदान्त ग्रन्थ में ये छः लिंग प्रायः होते हैं। इस प्रकार वेदान्त वाक्य स्वतः ही प्रमाणभूत है। अन्तःकरण में विद्यमान पाप-पुण्यरूप अशुद्धि वेद में उक्त विधि द्वारा नष्ट होती है। इस प्रकार सभी विधियाँ यहाँ उपयोगिता को कहती हैं। परन्तु वेदान्त वाक्य विधियों में अनुपयोगी है। अतः वेदान्त वाक्य पूर्वविधि से शेष नहीं है। अतः वेदान्त न विधि, न अर्थवाद, न ही दोनों से शेष है। वेदान्त में कुछ पूर्व अज्ञात का ज्ञान होता है, इस हेतु से वेदान्त भी विधि रूप में व्यपदिष्ट होता है। कुछ वेदान्त में विधि

बोधक पद नहीं है, परन्तु अज्ञात का ज्ञापन उसमें होता है। अतः वह भूतार्थवाद को कहा जाता है, यह अन्य है। वेद के जिस भाग में यह प्रतिपादित है, वह भाग उपनिषद् कहलाता है।

3.1.9 उपनिषद्

आरण्यक की परिशिष्ट भूता उपनिषद् है। आरण्यक में विद्यमान अध्यात्म तत्व की आलोचना ही उपनिषदों में परम् स्फूर्ति को प्राप्त कर परिसमाप्त होती है। शब्द राशि वेद का अन्तिम भाग उपनिषद् है। अतः वह वेदान्त है। वेद का लक्ष्य ही उपनिषदों में आम्नात् (विहित) विद्या है। अतएव उपनिषद् वेदशिरोभूत है। अतएव उसे वेदान्त कहते हैं।

विशरण, गति और अवासदन अर्थपूर्वक, उप और नि उपसर्ग पूर्वक सद् धातु में क्विप् प्रत्यय होने पर उपनिषद् शब्द व्युत्पन्न होता है। उपनिषद् शब्द का अर्थ है ब्रह्मम-विद्या। ब्रह्म-विद्या उपनिषद् के वचन द्वारा स्वसंशीलियों के संसारसारता के मत को खण्डित अथवा शिथिल करती है, प्रत्यागात्मा (व्यापक ब्रह्म) को अनुसरण करती है, तथा दुःख, जन्म आदि मूल-ज्ञान का उन्मूलन करती है। यद्यपि ब्रह्म विद्या ही उपनिषद् है तथापि गौण अर्थ में ब्रह्म-विद्या के प्रकाश ग्रन्थ में भी उपनिषद् शब्द का उपचार द्वारा प्रयोग होता है।

वेदान्त का सार

अब संक्षिप्त रूप में समग्र वेदान्त का सार कहते हैं। ब्रह्म ही एक सत् है, अन्य सभी रज्जू में सर्प के समान ब्रह्म में अविद्या द्वारा अध्यस्त असत् ही है। जीव ही अविद्या के प्रभाव के कारण असत् वस्तु के रूप में उत्पन्न होकर सत्व के द्वारा विवेचन करता है तथा अपने स्वरूप से निष्काम ब्रह्मभूत भी अपने स्वरूप को भूलकर अभिन्न को भी भिन्न मानने अथवा द्वेष पूर्वक कामना करते हुए कर्मों में अनुतिष्ठित होता है, और उसके शुभ-अशुभ फलों के उपभोग रूप में जन्म और जन्मान्तर द्वारा संसार-सिन्धु में अवतरित होते हैं। जैसे स्वरूप आवरक माया की अपाकृति होती है वैसे ही संसारावृत्ति चलती अथवा रूकती है।

अतः निष्काम कर्म द्वारा चित्तशुद्धि होती है। उपासना द्वारा चित्त की एकाग्रता होती है। और 'इहामुत्रफलभोगविराग', 'शमदमादिषट्कसम्पत्ति' को अर्जित कर संसार-ताप-दाह में समान रहने वाला मुमुक्षु यदि ब्रह्मज्ञ गुरू के समीप जाता है। और वहाँ गुरूमुख से वेदान्त-वाक्य को सुनता है। और उससे मनन, निदध्यासन का आचरण करता है। उसके द्वारा समाधि में ब्रह्म में लीन उसकी माया विध्वस्त होती है। नित्यप्राप्त उसका ब्रह्म-स्वरूप आकाश में सूर्य के समान प्रकाशित होता है। सर्वत्र आत्मा को आत्मा में देखता है और उसका कोई भी द्वेष अथवा काम्य बाकी नहीं रहता। और उसके लिए कोई चेष्टा भी नहीं होती है। कर्म के अभाव के कारण फल भी फलित नहीं होता है। फल के अभाव से फल के उपभोग के लिए शरीर-परिग्रह भी आवश्यक नहीं होता। वह ब्रह्मविद्

टिप्पणी

पुनः उत्पन्न नहीं होता। जब तक प्रारब्ध का क्षय नहीं होता है तब तक वह शरीर धारण के लिए कर्तव्यमात्र बुद्धि द्वारा आवश्यक कर्ममात्र का अनुष्ठान करता है। यथा पुरूष अचेतन मूर्ति को देखकर उसकी अचेतनपिण्डमात्र स्वरूपता का भी अन्वेषण करता है, उसी प्रकार ब्रह्मविद् भी सभी जगत् को देखकर भी उसमें अनुस्यूत ब्रह्मस्वरूप का अन्वेषण भी करता है। क्षीण और प्रारब्ध शरीर को त्याग कर ब्रह्म में लीन हो जाता है। 'ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्नोति' यह वेदान्त का सार है।

इस प्रकार विधि, अर्थवाद, आरण्यक, उसके भेद, उपनिषद्, वेदान्त, इस प्रकार ब्राह्मण निरूपित है।

3.2 वेदों के प्रयोजन भेद द्वारा भेद

वेदों के द्वारा मानवों का जो प्रयोजन सिद्ध होता है उसके अनुसार वेद का विभाग भी किया जाता है। इसलिए कर्मकाण्ड और ब्रह्मकाण्ड दो भेद हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरूषार्थों में धर्म, अर्थ, काम का साधनभूत कर्मकाण्ड है। मोक्ष का साधनभूत ब्रह्मकाण्ड है।

वेद में जो कर्म प्रतिपादित है उसका विपुल विस्तार कालक्रम से हुआ। कौन-सा कर्म किस प्रकार से करना चाहिए। कौन-सा वेदमन्त्र किस प्रकार से पढ़ना चाहिए इत्यादि विषयों की अच्छी प्रकार से कार्य-विभाग की आवश्यकता अनुभूत हुई। अत एव वेद का जैसा प्रयोग होता है उसके अनुसार वेद का विभाजन किया गया है। उसके लिए उनके नाम स्थिरीकृत होते हैं। यह समाख्या (नाम) कही जाती है। होत्रप्रयोग, आध्वर्यवप्रयोग, औग्दात्रप्रयोग, ये तीन प्रयोग हैं। उसके अनुसार यज्ञ के निर्वाह के लिए वेद के ऋग्, यजु, साम तीन भेद हुए। ऋग्वेदीय कर्म जो करता है, वह 'होता' कहलाता है। उसके द्वारा करने योग्य प्रयोग हौत्रप्रयोग है। यजुर्वेदीय कर्म जो करता है वह 'अध्वर्यु' कहलाता है। उसके द्वारा करने योग्य प्रयोग आध्वर्यवप्रयोग है। सामवेदीय कर्म जो करता है, वह उद्गाता कहलाता है। उसके द्वारा करने योग्य प्रयोग औद्दात्रप्रयोग कहलाता है। अथर्ववेद का भी ऋत्विक् होता है। वह ब्रह्मा कहलाता है।

आहुति प्रदान करने के समय में याज्य पुरोनुवाक्य के ऋग्वेदीय मन्त्रों को 'होता' पढ़ता है। गो-दोहन, व्रीहि-निर्वाप इत्यादि कार्य यजुर्वेद में हैं। इस विषय का मन्त्र-पाठ अध्वर्यु करता है। आज्यस्तोत्र, पृठस्तोत्र आदिस्तोत्र सामवेद में हैं। उनको उद्गाता गाता है।

कर्मकाण्ड में नित्य, नैमित्तिक, काम्य और निषिद्ध, ये चार कर्म प्रतिपादित है। इन कर्मों के भी प्रकृति कर्म और विकृति कर्म विभाग हैं। इस प्रकार चार वेदों के प्रयोजन भेद द्वारा कहे गए हैं।

पाठगत प्रश्न 3.4

1. आरण्यक का परिशिष्ट भूत क्या है?

   (क) ऋक् मन्त्र का (ख) यजु मन्त्र का

   (ग) साम संहिता का (घ) उपनिषद्

2. रहस्य शब्द से क्या अर्थ होता है?

   (क) मन्त्र (ख) कल्प (ग) कर्मविद्या (घ) ब्रह्मविद्या

3. जिस ब्राह्मण वाक्य में विधि, निषेध, नामधेय, अर्थवाद नहीं कहे जाते, उस ब्राह्मण वाक्य को क्या कहते हैं?

   (क) वेदान्त (ख) ब्राह्मण (ग) आरण्यक (घ) मन्त्र

4. वेदान्त-श्रवण के कितने लिंग हैं?

   (क) तीन (ख) चार (ग) पाँच (घ) छः

5. यह ब्राह्मण भाग भी है, वेदान्त श्रवण का लिंग भी है?

   (क) विधि (ख) अभ्यास (ग) अर्थवाद (घ) अपूर्वता

6. उपनिषद् पद का मुख्यार्थ क्या है?

   (क) मुण्डक आदि ग्रन्थ (ख) ब्रह्मविद्या

   (ग) धर्मविद्या (घ) मन्त्रात्मक वेद

7. ऋग्वेदीय कर्म कौन करता है?

   (क) होता (ख) अध्वर्यु (ग) उद्गाता (घ) ब्रह्मा

8. यजुर्वेदीय कर्म कौन करता है?

   (क) होता (ख) अध्वर्यु (ग) उद्गाता (घ) ब्रह्मा

9. सामवेदीय कर्म कौन करता है?

   (क) होता (ख) अध्वर्यु (ग) उद्गाता (घ) ब्रह्मा

10. हौत्रप्रयोग किस वेद से सम्बद्ध है?

    (क) ऋक् (ख) यजु (ग) साम (घ) अथर्व

11. आध्वर्यवप्रयोग किस वेद से सम्बद्ध है?

    (क) ऋक् (ख) यजु (ग) साम (घ) अथर्व

टिप्पणी

12. औद्गात्रप्रयोग किस वेद से सम्बद्ध है?

(क) ऋक् (ख) यजु (ग) साम (घ) अथर्व

3.3 वेदांग

अट्ठारह विद्यास्थान हैं। उसमें प्रथम चारों वेद निरूपित हैं। अब अंगों को निरूपित करते हैं। वेद के छः अंग हैं। शिक्षा, व्याकरण, निरूक्त, छन्द, ज्योतिष, कल्प ये अंग हैं। वेदाध्ययन छः अंग सहित किया जाता है। उसमें यह श्लोक समुदाय सुप्रसिद्ध है-

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरूक्तं श्रोत्रमुच्यते॥

शिक्ष घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् सांगमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥ (पा.श.)

इन दो श्लोकों में वेद पुरूष के समान कल्पित है। उस पुरूष के दो पैर छन्दः शास्त्र, दो हाथ कल्प शास्त्र, चक्षु ज्योतिषशास्त्र, श्रोत्र निरूक्तशास्त्र, घ्राण शिक्षा शास्त्र एवम् मुख व्याकरण-शास्त्र है, ऐसा प्रतिपादित है। यहाँ जैसे पुरूष का मुख शरीर में मुख्य होता है, वैसा ही व्याकरणशास्त्र का स्थान है। इस प्रकार व्याकरणशास्त्र का महत्व है। वेदों के रक्षण के लिए व्याकरणशास्त्र की अतीव उपयोगिता है। व्याकरण का ज्ञान वेद-ज्ञान के बिना नहीं हो सकता। वेद के छः अंग हैं। उनमें व्याकरण ही प्रधान होता है। और प्रधान में किया गया यत्न फलवान् होता है। इस प्रकार सभी अंग गुरूत्वपूर्ण होते हैं।

3.3.1 शिक्षा

स्वरवर्णोच्चारण के प्रकार की जिसमें शिक्षा या उपदेश दी जाती है, वह शिक्षा है। शिक्षा का उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत आदि विशिष्ट स्वर, व्यञजनात्मक वर्णोच्चारण एवं विशेष ज्ञान प्रयोजन है। उसके अभाव में मन्त्रों के अनर्थ होने के कारण। इसीलिए कहा गया है-

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्ततो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥ (शि-52)

संस्कृत में स्वर और व्यञ्जन दो प्रकार के वर्ण हैं। ईश्वर ने कहा की शम्भु के मत में 63 वर्ण अथवा 64 वर्ण हैं। स्वरों में उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, अनुनासिक, अननुसासिक, भेद होते हैं। वर्णों के ऊर, कण्ठ, शिर, जिहामूल, दन्त, नासिका, ओष्ठ और तालु आठ उच्चारण स्थान हैं। आभ्यन्तर और ब्राह्य भेद से यत्न दो प्रकार

के होते हैं। आभ्यन्त चार अथवा पाँच प्रकार के होते हैं। बाह्य ग्यारह प्रकार के होते हैं। अनेक विषय शिक्षाग्रन्थों में अन्तर्निहित होते हैं। वैदिकों द्वारा वर्ण का शुद्ध उच्चारण करके शिक्षाशास्त्र अवलम्बित है। शुद्ध उच्चारण नहीं किया जाए तो मन्त्र अर्थहीन अथवा विपरीतार्थक सम्पन्न होता है। तब इष्टफल प्राप्त नहीं होता है। और भी मन्त्र द्वारा जो विपरीत अर्थ प्रकट होता है वैसा ही फल उत्पन्न होता है। अत: इष्ट प्राप्ति और अनिष्ट हानि के लिए शुद्ध उच्चारण निश्चित रूप से करना चाहिए। उसमें इन्द्रवृत्रसुर की आख्यायिका सुप्रसिद्ध है। विस्तार के भय से यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

पाणिनि के मत को अवलम्बित करके पाणिनि शिक्षा प्रणीत हुई है। यह सर्ववेद साधारण है। उसमें पाँच खण्ड हैं। वेदों की अनेक शाखाएँ हैं। शाखाओं रचनाओं में कुछ शिक्षा मुनियों द्वारा दी गई है। प्रतिशाख भिन्न वह शिक्षा प्रतिशाख्य कहलाती है।

3.3.2 व्याकरण

पाणिनिमुनि ने महेश्वर से आशीर्वाद रूप में चौदह सूत्र प्राप्त किए। उनका अवलम्बन करके अष्टाध्यायी नामक सूत्रात्मक ग्रन्थ उन्होंने प्रणीत किया। उसमें आठ अध्याय है और प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं। उसमें 3992 सूत्र हैं। उसमें प्रथम सूत्र है - वृद्धिरादैच्।

भगवान पाणिनि द्वारा अष्टाध्यायी में जो कहा गया है उसकी चिन्ता को, जो उक्त नहीं है किन्तु आवश्यक है उसका चिन्तन को, जो अवक्तव्य है किन्तु उक्त है उसके चिन्तन को वार्तिक में कात्यायन मुनि ने किया। वह चिन्ता उक्त, अनुक्त, दुरूक्त चिन्ता कही जाती है। काव्यायन द्वारा जो वार्तिक विरचित है उसमें भगवान पतञ्जलि ने महाभाष्य को रचा। महाभाष्य में मूल सूत्र का व्याख्यान है वार्तिक का व्याख्यान भी है। कात्यायन द्वारा कृत बहुत से वार्तिक पतञ्जलि द्वारा प्रत्याख्यात हैं। इस प्रकार पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि तीनों मुनियों द्वारा इस सम्पूर्ण व्याकरण की सर्वांग सम्पूर्णता सिद्ध की गई। अत: इस व्याकरण को त्रिमुनि व्याकरण कहते हैं। महेश्वर के आशीर्वाद/प्रसाद से इसका आरम्भ हुआ। अत: यह सम्प्रदाय माहेश्वर सम्प्रदाय कहलाता है। पाणिनि व्याकरण में ही वैदिक व्याकरण भी है। अत एव यह वेदांग को भजते हैं। अन्य बहुत से व्याकरण हैं। किन्तु उन वेदों का व्याकरण नहीं है, इस हेतु में वे वेदांग्त्व द्वारा गणित नहीं होते हैं। रक्षा, ऊह, आगम, लधु, असन्देह, ये व्याकरण के अध्ययन के मुख्य प्रयोजन हैं। अन्य गौण प्रयोजन भी हैं। वे विस्तारपूर्वक महाभाष्य में वर्णित हैं। व्याकरण में प्रत्येक पद प्रकृति-प्रत्यय विभाग द्वारा कल्पित है। उनके योग से साधुपद व्युत्पन्न होते हैं। इस प्रकार व्याकरण साधुपद कौन हैं, यह ज्ञान करवाता है।

पाठगत प्रश्न 3.4

1. वेद का हस्त स्थानीय कौन सा अंग होता है?

टिप्पणी

(क) शिक्षा (ख) व्याकरण (ग)छन्द (घ) कल्प

2. वेद का मुख्यस्थानीय कौन सा अंग होता है?

(क) शिक्षा (ख)व्याकरण (ग) छन्द (घ) कल्प

3. वेद का श्रोत्रस्थानीय कौन सा अंग होता है?

(क) शिक्षा (ख) व्याकरण (ग) छन्द (घ) निरूक्त

4. शिक्षा वेद का कौन-सा अंग होता है?

(क) हस्त (ख) पैर (ग) श्रोत्र (घ) घ्राण

5. व्याकरण वेद का कौन-सा अंग होता है?

(क) हस्त (ख) पैर (ग) श्रोत्र (घ) मुख

6. ज्योतिष वेद का कौन-सा अंग होता है?

(क) हस्त (ख) पाद (ग) श्रोत्र (घ) चक्षु

7. स्वरवर्णोच्चारण प्रकार जिसमें शिक्षा अथवा उपदिष्ट है वह अंग क्या कहलाता है?

(क) शिक्षा (ख) व्याकरण (ग) छन्द (घ) निरूक्त

8. अष्टाध्यायी में कितने पाद है?

(क) 10 (ख) 16 (ग) 14 (घ) 32

9. त्रिमुनि व्याकरण में यह तीन मुनियों में नहीं है।

(क) पाणिनि (ख) पतञजलि (ग) कात्यायन (घ) कैयट

10. यह व्याकरण का सम्प्रदाय है।

(क) कणाद (ख) माहेश्वर (ग) पातञजल (घ) पाणिनीय

11. प्रकृति-प्रत्यय के विभाग से पदसाधुत्व का ज्ञान किस शास्त्र द्वारा होता है?

(क) शिक्षा (ख) व्याकरण (ग) छन्द (घ) निरूक्त

3.3.3 निरूक्त

शिक्षा द्वारा शुद्ध उच्चारण एवं व्याकरण द्वारा साधु पद जाने जाते हैं। वहाँ से वेद के मन्त्रों में स्थित पदों का क्या अर्थ है, यह जिज्ञासा अच्छी प्रकार से उदित होती है। उसके लिए भगवान् यास्क ने निरूक्त नामक ग्रन्थ रचा। उसमें चौदह अध्याय हैं। कहीं बारह अध्याय, तेरह अध्याय भी पाठभेद में मिलते हैं। सायण ने ऋग्वेदभाष्यभूमिका में

कहा कि अर्थ के अवबोधन में निरपेक्षता पूर्वक पद की उत्पत्ति जहाँ उक्त है, वहाँ निरूक्त है। निरूक्त में कौन से विषय हैं, यह निम्न श्लोक में सुनिबद्ध है-

वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्णविकरनाशौ।
धातोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्यते पञ्चविधं निरूक्तम्॥

वर्णागम, वर्णविपर्यय, वर्णविकार, वर्णनाश, अर्थ के अतिशय द्वारा धातु का योग, ऐसे ये विषय निरूक्त में हैं।

निरूक्त में नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात, ये चार पद हैं, ऐसा निरूपित है। और वहाँ वैदिक मन्त्रों का अर्थ भी प्रकाशित है। अनुष्ठेय अर्थ का प्रकाशन मन्त्र करते हैं। अतः वहाँ वे करणरूप में हैं। वाक्यार्थ का ज्ञान और वाक्यघटकीभूत पदों का अर्थ ज्ञान द्वारा सम्भव होता है, अन्यथा नहीं। अतः वेदमन्त्र में स्थित पदों के अर्थपूर्ण ज्ञान के लिए निरूक्त अपेक्षित है।

निश्चयेयन घटयति पठति शब्दान इति निघण्टुः।

जिन पदों का प्रकृति-प्रत्यय विभाग सुलभ न हो उनका अन्तर्भाव निघण्टु में होता है। निरूक्त में अन्तर्भूत ही वैदिक द्रव्यों तथा वैदिक देवताओं के पर्याय शब्द निघण्टु में हैं। भगवान् यास्क ने पञ्चाध्यायात्मक निघण्टु नामक ग्रन्थ उपनिबद्ध किया। और उसकी व्याख्या की। वह व्याख्या ही निरूक्त कहलाती है। यास्क द्वारा रचित निघण्टु की व्याख्या निरूक्त कहलाती है। नैघण्टुकाण्ड, नैगमकाण्ड, दैवतकाण्ड, ये निघुण्टु के तीन काण्ड हैं। कारिका-

आद्यं नैघण्टुकाणं द्वितीयं नैगमन्तथा।
तृतीयं दैवतं चेति समाम्नायस्त्रिधा मतः॥ (अनुक्रमणिकाभाष्यम्)

निघण्टु शब्द का अर्थ - एकार्थवाची पर्याय शब्दों का संघ जिसमें प्रायः उपदिष्ट है, उसमें निघण्टु शब्द प्रसिद्ध है। नैघण्टु काण्ड में पर्याय शब्द संघात का उपदेश है। उस काण्ड में तीन अध्याय हैं। निगम शब्द वेद वाची है। प्रायः वेद में ही वर्तमान शब्दों का चतुर्थ अध्याय में निरूपण है। वह यह नैगमकाण्ड है। तृतीय काण्ड दैवतकाण्ड है। पञ्चम् अध्याय उसमें अन्तर्निहित है।

निघण्टु में तीन काण्ड हैं। उनकी व्याख्या ही निरूक्त है। निघण्टु में नैघण्टु नामक प्रथम काण्ड की व्याख्या तीनों अध्यायों द्वारा की गई है। निघण्टु में नैगम नामक द्वितीय काण्ड की व्याख्या चतुर्थ अध्याय द्वारा की गई है। निघण्टु में दैवतकाण्ड की व्याख्या पञ्चम् अध्याय द्वारा की गई है। इस पञ्चम् अध्याय द्वारा की गई है। इस प्रकार निघण्टु के तीन काण्ड पाँच अध्यायों में विभक्त हैं।

निघण्टु के नैघण्टुकाण्ड की व्याख्या निरूक्त के तीन अध्यायों में समुपलब्ध है। निघण्टु के चतुर्थ अध्यायात्मक नैगमकाण्ड की व्याख्या निरूक्त में चतुर्थ, पञ्चम् और षष्ठ अध्यायों

टिप्पणी

में विराजमान है। निघण्टु के पञ्चम् अध्यायात्मक दैवतकाण्ड की व्याख्या निरूक्त में सप्तम अध्याय के आरम्भ से द्वादशाध्याय तक उपलब्ध है। इस प्रकार निरूक्त में द्वादश अध्याय हैं। उसमें भी दो अध्याय सर्वतः भिन्न परिशिष्ट रूप से विद्यमान है। संकल के द्वारा चतुर्दश अध्याय निरूक्त में विकसित है। निरूक्त के दो अध्यायों के अपूर्णतावश तेरह अध्याय हैं। उसमें इस प्रकार विभाग विभावनीय है-

- निघण्टु का प्रथम, द्वितीय, तृतीय अध्याय = नैघण्टुकाण्ड = निरूक्त का प्रथम, द्वितीय, तृतीय अध्याय
- निघण्टु का चतुर्थ अध्याय = नैगमकाण्ड = निरूक्त का चतुर्थ, पञ्चम्, षष्ठ अध्याय
- निघण्टु का पञ्चम् अध्याय = दैवत काण्ड = निरूक्त के सप्तम अध्याय से द्वादश अध्याय तक

व्याकरण और निरूक्त में कुछ वैलक्षण्य है। यथा-रासायनिक स्थान पर औषधि के दो प्रयोग होते हैं। प्रथम निर्माण स्थान। यहाँ नाना प्रकार के औषधियों के युक्त मिश्रण से वटी, चूर्ण आदि औषधि निर्मित होती है। द्वितीय विश्लेषण स्थान। प्रथम स्थान पर वटी, चूर्ण आदि रूप में निर्मित औषधि के अवयव पृथक् किये जाते हैं। वहाँ परीक्षण किया जाता है कि एक औषधि में किस औषधि की कितनी मात्रा है। इसी प्रकार शब्द विषय में दो शास्त्र हैं। प्रथम व्याकरण। इसमें शब्द के मूलभागों को लेकर शब्द निर्मित होता है। द्वितीय निरूक्त। पूर्व में निर्मित शब्द के निरूक्त में अवयव पृथक-पृथक किये जाते है, उसके अर्थज्ञान के लिए। एवम् पूर्व में वर्तमान पुरातन शब्द के विभाग करण शास्त्र को निरूक्त कहते हैं, ऐसा निरूक्त का शाब्दिक स्वरूप है।

3.3.4 छन्द

ऋग्वेद के मन्त्र में पाद हैं। मन्त्र में छन्द अर्थात् वृत्त है। जो मन्त्रों का छन्द नहीं जानता है तथापि पढ़ता है, उसकी निन्दा सुनी जाती है। उपाय सम्भव है। यज्ञ आदि में अनेक कर्म होते हैं। और वे कर्म अधिकार भेद से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य द्वारा किये जाते है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में निर्देश प्राप्त होता है कि ब्राह्मण गायत्री मन्त्र द्वारा अग्नि का अधिष्ठान करे। राजा रक्षा करे। वैश्य जगत् में व्यापार करे। इस प्रकार अनुष्ठान विशेष छन्द विशेष निमित्त द्वारा विधान होता है। अतः यहाँ भी वेद प्रयोग छन्द के ज्ञान के बिना नहीं कर सकते। अतः छन्द-ज्ञान प्रयोजन है। अतः छन्दों के प्रकाशन के लिए पिंगलमुनि द्वारा 'छन्दः सूत्र' की रचना की गई। उसमें तीन अध्यायों में गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती, अलौकिक छन्द विवृत है, और उनके अवान्तर भेदः है। उसमें भी लौकिक छन्द पाँच अध्यायों में प्रकाशित हैं। ये छन्द पुराण, इतिहास आदि में हैं।

3.3.5 ज्योतिष

वैदिक कर्म कब करने चाहिए और किस काल द्वारा किये जाने चाहिए, ऐसा वेद में विहित है। अत एवं काल की समुचित गणना और ज्ञान आवश्यक है। वसन्ते ब्राह्मणेऽग्निमादधीत। ग्रीष्मे राजन्य आदधीत। शरदि वैश्य आदधीत। (तै. ब्रा.) फाल्गुनीपूर्णमासे दीक्षेरन्। (तै. स. 7.4.8) कृत्तिकास्वग्निमादधीत। (वै.ब्रा. 1.1.2.1) इत्यादि वचनों द्वारा ज्ञात होता है कि विशिष्ट काल में कर्म अनुष्ठेय होते है। कालज्ञ ही यह करने में समर्थ हैं। अत: ज्योतिष शास्त्र प्रवृत्त हुआ। इस शास्त्र द्वारा काल का ज्ञान होता है। भगवान् आदित्य और गर्गादि ने काल ज्ञान के लिए विविध ग्रन्थों की रचना की। कहा गया है कि ज्योतिष कालबोधक शास्त्र होता है। वेद में विहित कर्म जिस विशिष्ट काल में करने होते हैं, वह काल विशिष्ट मास-पक्ष-तिथि-प्रभृति के अंशों को आश्रय बनाकर सिद्ध होता है। मास-पक्ष-तिथि आदि का विवेक ज्योतिष द्वारा होता है। अत: काल विशेष को आश्रय बनाकर विहित वैदिक कर्मों के अनुष्ठान में कालबाधकता के द्वारा ज्योतिष महान उपकार करता है। वेद-भेद के द्वारा वेदांगभूत ज्योतिष भी भिन्न होता है। लगध कृत वेदांग ज्योतिष अत्यन्त प्रसिद्ध होता है

अनुक्रम	वेदांग	प्रणेता	ग्रन्थ-नाम	अध्याय संख्या
1	शिक्षा	(अज्ञात)	पाणिनीय शिक्षा	5 खण्ड
2	व्याकरण	पाणिनि	अष्टाध्यायी	8 अध्याय
3	निरूक्त	यास्क	निरूक्त	14 अध्याय
4	छन्द	पिंगल	छन्द: सूत्र	8 अध्याय
5	ज्योतिष	आदित्यादि	-	-
6	कल्प	(अनेक)	-	-

3.3.6 कल्प

यज्ञ, याग, इष्टि आदि रूप में विविध कर्म वेद द्वारा प्रतिपादित हैं। उन कर्मों में विविध मन्त्र प्रयुज्य हैं। इन मन्त्रों की संख्या विपुल है। एक-एक याग आदि अनुष्ठान में विविध कर्म होते हैं। उनकी भी संख्या विपुल है। और स्वरूप जटिल होता है। कब किस क्रम से क्या कर्म करने योग्य है? कब किससे किस मन्त्र का प्रयोग करने योग्य है, ऐसे विषय में स्पष्टता आवश्यक है। सभी लोग समग्र वेद को पढ़ने के ही निर्णय में असमर्थ हैं। अत: विभागश: ये विषय विद्वानों द्वारा सभी के हित के लिए प्रतिपादित हैं। ये विषय कल्प के ही हैं। उसमें आश्वलायन, शाङ्खायन इत्यादि आचार्यों द्वारा हौत्र प्रयोग के लिए कल्पसूत्र प्रणीत हैं। अर्थात् ऋग्वेदीय ऋत्विक होता, उसके द्वारा किये जाने वाले जो प्रयोग हौत्र प्रयोग हैं, उसको उद्देश्य करके प्रणीत हैं। बौधायन, आपस्तम्ब,

टिप्पणी

कात्यायन इत्यादि आचार्यों द्वारा आध्वर्यव प्रयोग के लिए कल्पसूत्र प्रणीत हैं। अर्थात्-यजुर्वेदीय ऋत्विक अध्वर्यु, उसके द्वारा किये जाने वाले जो प्रयोग आध्वर्यव प्रयोग है, उसको उद्देश्य करके कल्पसूत्र प्रणीत हैं। लाट्यायन, द्राह्यायण इत्यादि आचार्यों द्वारा औद्गात्रप्रयोग के लिए कल्पसूत्र प्रणीत हैं। अर्थात् सामवेदीय ऋत्विक उद्गाता, उसके द्वारा किये जाने वाले प्रयोग औद्गात्रप्रयोग, उसको उद्देश्य करके कल्पसूत्र प्रणीत हैं। वैतानसूत्र अथर्ववेदीय कल्पसूत्र गोपथब्राह्मण को अवलम्बन करके प्रणीत हैं। कल्प यज्ञ प्रक्रिया के निर्वहण के लिए आवश्यक विषयों का बोधक शास्त्र सूत्ररूप में उपलब्ध है, ऐसा ही कहा गया है।

प्रधान रूप से कल्पसूत्र दो प्रकार के होते हैं। श्रौतसूत्र और स्मार्तसूत्र। वेदोक्त अर्थात् श्रुति-युक्त कर्मविधियों के बोधक श्रौतसूत्र हैं। स्मृत्युक्त कर्मविधियों के बोधक स्मार्तसूत्र हैं। स्मार्तसूत्र भी श्रुत्युक्तों के कर्मविधियों के ही बोधक होते हैं। उसमें पुनः दो विभाग है- धर्मसूत्र और गृह्यसूत्र। वर्णाश्रम-भेद से धर्म का बोध धर्मसूत्र कराता है। गृहसूत्र तो सोलह संस्कारों का विधि-बोधक शास्त्र है। उसका उपयोग गृहस्थाश्रम में विशेष होता है। शुल्बसूत्र तो श्रौतसूत्र में अन्तर्निहित है। और वह यज्ञकुण्ड-यज्ञशाला आदि का मापन के लिए अपेक्षित होता है।

पाठगत प्रश्न 3.5

1. अर्थ के अवबोध में निरपेक्षतया पद उत्पत्ति को जहाँ कहा गया है वह सायण के मत में क्या है?

   (क) शिक्षा (ख) व्याकरण (ग) छन्द (घ) निरूक्त

2. निघण्टु के तीन काण्डों में यह नहीं है।

   (क) नैघण्टु (ख) नैरूक्त (ग) नैगम (घ) दैवत

3. निरूक्त में कितने अध्याय हैं?

   (क) 10 (ख) 14 (ग) 16 (घ) 18

4. ब्राह्मण किस प्रकार के मन्त्र द्वारा अग्नि का अनुष्ठान करे?

   (क) गायत्रीमन्त्र द्वारा (ख) त्रिष्टुप्मन्त्र द्वारा

   (ग) बृहतीमन्त्र द्वारा (घ) उष्णिक्मन्त्र द्वारा

5. पैंगल छन्द विवृति में अलौकिक छन्द कितने अध्यायों में हैं?

   (क) आदि के तीन में (ख) शेष के तीन में

   (ग) आदि के चार में (घ) शेष के चार में

पाठसार

वेद भारतीय ज्ञान सागर का जलद है। और वह ज्ञानराशि है। उसके द्वारा पुरूषार्थ का अलौकिक उपाय जाना जाता है। अन्यथा मानव पुरूष को नहीं जान सकता अथवा उसके अलौकिक उपाय को नहीं जान सकता। अत एव देवताओं, पितरो और मानवों का दिव्य सनातन चक्षु वेद ही है, ऐसा कहते है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप चार प्रकार के पुरूषार्थ ज्ञातव्य है और वेद ही परम प्रमाण है। और उसके ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद, ये चार वेद हैं। प्रत्येक वेद का मन्त्र और ब्राह्मण विभाग होता है। कर्म का अनुष्ठान, अनुष्ठान का द्रव्य, देवता इत्यादि के प्रकाशक और प्रतिपादक मन्त्र हैं। मन्त्रांश को छोड़कर शेष भाग ब्राह्मण कहलाता है। ब्राह्मण में याग आदि क्रियाविधि प्रधान रूप से प्रतिपादित है। ब्राह्मणों में वर्ण्यमान विषय जो छः हैं - विधि, अर्थवाद, निन्दा, प्रशंसा, पुराकल्प और पराकृति।

ब्राह्मण के परिशिष्टभूत आरण्यक और उपनिषद्, ये दो हैं। गोपथ ब्राह्मण में आरण्य को रहस्य भी कहते हैं। आरण्यक की परिशिष्टभूता उपनिषद् है। उपनिषद् ब्रह्म-विद्या होती है। अधिकारी उस विद्या को प्राप्त करते हैं जिससे वह विद्या उसके संसार बन्ध को नष्ट करती है, उस परम ब्रह्म को प्राप्त करता है, जन्म-जरा आदि का क्षय करता है।

मर्त्य काम्य और निषिद्ध कर्मो को परित्यक्त नित्य, नैमित्तिक और प्रायश्चित द्वारा चित्तशुद्धि को सम्पादित करता है। उपासना द्वारा चित्त की एकाग्रता को बढ़ाता है। विवेक आदि साधनचतुष्टसम्पन्न होता है। तब संसार-ज्वाला के असहनीय होने पर गुरू के शरण में जाता है। और गुरू अध्यारोप-अपवाद न्याय द्वारा उसको उपदेश देता है। और उससे वह श्रवण, मनन, निदिध्यासन समाधियों द्वारा जीव-ब्रह्म के ऐक्य को जानता है। तब उसकी हृदय-ग्रन्थि को भेदन होता है, सर्वसंशय छिन्न होते हैं, कर्मबन्धन क्षीण हो जाते हैं। अतः मुक्त होता है। ब्रह्मविद् ब्रह्म ही हो जाता है, ऐसा वेदान्त का सार है। प्रयोजन के भेद से भी वेद के कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड दो विभाग होते हैं।

वेद के छः अंग हैं। शिक्षा, व्याकरण, निरूक्त, छन्द, ज्योतिष और कल्प, ये वेद के षड्ग हैं। स्वरवर्णोच्चारण के प्रकार जिसमें बताए या उपदेश किये जाते है, वह शिक्षा है। व्याकरण में प्रत्येक पद के प्रकृति और प्रत्यय विभाग कल्पित हैं। उन दोनों के योग से साधु पद व्युत्पन्न होते हैं। इस प्रकार व्याकरण साधुपद कौन से हैं, यह ज्ञान कराता है। वैदिक पदों का अर्थज्ञान निरूक्त द्वारा होता है। मन्त्रों में विद्यमान छन्दों का ज्ञान छन्दःशास्त्र द्वारा होता है। कर्म-अनुष्ठान की काल गणना ज्योतिष द्वारा होती हे। मन्त्रप्रयोग, स्थण्डिल, मण्डप आदि के निर्माण, किस ऋत्विज का क्या कार्य है इत्यादि ज्ञान कल्प शास्त्र द्वारा होता है। इस प्रकार वेदांग निरूपित हैं।

पाठान्त प्रश्न

टिप्पणी

1. वेद शब्द का अर्थ प्रतिपादित कीजिए।
2. वेद की महिमा लिखिए।
3. वेद का क्या लक्षण हैं?
4. मन्त्रों का परिचय दीजिए।
5. ऋक् मन्त्रों से यजु मन्त्रों का क्या भेद है?
6. वेद भाग ब्राह्मण का परिचय दीजिए।
7. ब्राह्मण के भेदों को लिखिए।
8. विधि के भेदों का परिचय दीजिए।
9. गुण कर्म का वर्णन कीजिए।
10. अर्थ कर्म का वर्णन कीजिए।
11. ब्राह्मण में क्या निषेध है?
12. ब्राह्मण में नामधेय क्या है?
13. अर्थवाद का परिचय दीजिए।
14. गुणवाद का परिचय दीजिए।
15. भूतार्थवाद का गुणवाद में क्या वैलक्षण्य है?
16. आरण्यकों का परिचय दीजिए।
17. वेदान्त का परिचय दीजिए।
18. उपनिषद् का परिचय दीजिए।
19. प्रयोजन भेद से वेद के भेदों को बताइये।
20. वेदपुरूष के कौन से अंग क्या स्थानीय है?
21. शिक्षा को संक्षिप्त में समझाइए।
22. व्याकरण की व्याख्या कीजिए।
23. निरूक्त का निवर्चन कीजिए।
24. छन्द को गायें।

25. ज्योतिष का दिग्दर्शन कीजिए।

26. कल्प की कल्पना कीजिए।

पाठान्त प्रश्नों के उत्तर

उत्तर-3.1

1. विद्-ज्ञाने, इस धातु से धाञ् प्रत्यय के योग द्वारा वेद शब्द निष्पन्न है। अतः वेद अलौकिक ज्ञानराशि ही होता है।
2. ब्राह्मण के द्वारा निष्कारण धर्म, षड्ंग और वेद को जानना चाहिए।
3. (घ)
4. (घ)

उत्तर-3.2

(1) (क) (2) (ग) (3) (ख) (4) (ख) (5) (घ) (6) (घ) (7) (क)

उत्तर-3.3

(1) (घ) (2) (ख) (3) (ग) (4) (घ) (5) (घ) (6) (क) (7) (ख) (8) (ग)

उत्तर-3.4

(1) (घ) (2) (घ) (3) (क) (4) (घ) (5) (ग) (6) (ख) (7) (क) (8) (ख) (9) (ग) (10) (क) (11) (ख) (12) (ग)

उत्तर-3.5

(1) (घ) (2) (ख) (3) (घ) (4) (घ) (5) (घ) (6) (घ) (7) (क) (8) (घ) (9) (घ) (10) (ख) (11) (ख)

टिप्पणी

उत्तर-3.6

(1) (घ) (3) (ख) (5) (क)

(2) (घ) (4) (क)